

चित विज्ञान: अनुप्रयोग (योगवासिष्ठ एवं गीता के विशेष सन्दर्भ में)

रामेश्वर प्रसाद डौन्डे¹, प्रो. शिशिर कुमार मण्डल², सत्यम तिवारी³

1. शोधछात्र (योग विज्ञान), विकृति विज्ञान विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी
2. प्रो. एवं विभागाध्यक्ष, विकृति विज्ञान विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान, संस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी
3. सहायक आचार्य योग विज्ञान विभाग, अटल बिहारी बाजपेयी विश्वविद्यालय, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

शोध सार:

योग वासिष्ठ में शुद्ध चेतन आत्मा जब स्पन्दन युक्त होकर कल्पनात्मक रूप को धारण कर विषय से गर्भित होती है तब वह मन होती है। व्यक्त जगत में मन से बढ़कर शक्तिशाली कोई पदार्थ नहीं है। मन ही जगत की सृष्टि करता है, मन ही सब प्रकार के दुःख-सुखों का उत्पादक है। मन के हाथ में ही बन्ध और मोक्ष हैं। मन ही जगत हो जाता है मन ही वासना रहित होने पर ब्रह्म हो जाता है। जहाँ संकल्प है वहीं मन है। मनानन्त, अपार, पूर्ण, सर्वशक्तिमान ब्रह्म की जगत्-निर्माण करने वाली, दृश्य का अनुभव प्राप्त करने को उत्सुक, स्पन्द-शक्ति का, उस स्थिति में स्थित होती हुई का नाम है जबकि वह अपने आप का व्यक्त रूप से अनुभव करती है और ब्रह्म में स्थित होते हुए भी अपने आपको भिन्न समझकर जगत का निर्माण करती है। जगत का निर्माण वह कल्पना द्वारा करती है। कल्पना द्वारा ही वह अपने आपको दृश्य पदार्थों के आकार में देखती है। इसी कारण उसे जड़ और चेतन दोनों ही कहा है। अपने ही प्रयत्न के सिवाय कभी और कोई हमको सिद्धि देने वाला नहीं है। इसलिये जो कुछ प्राप्त करना चाहते हो उसके लिये प्रयत्न करो। यहाँ दूसरा कोई हमारे भाग्य का निर्माण करने वाला नहीं है। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो सत्कर्म और शुद्ध पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती हो। संसार के सब पदार्थों का रूप हमारे चिन्तन पर निर्भर है। चिन्तन करते-करते असत्य पदार्थ भी सत्य प्रतीत होने लग जाता है।

जैसा हमारा विचार वैसा हमारा जगत्। केवल चिन्तन के द्वारा ही स्वप्न की स्त्री जाग्रत की स्त्री के समान रति-सुख देती है। जिसके मन में जैसी चिन्तन उदय हो जाती है वह वैसा ही अनुभव किया करता है। जैसा खयाल जिसके मन में दृढ़ हो जाता है वह उसको प्रत्यक्ष रूप से वैसा ही अनुभव किया करता है। दृढ़ निश्चय वाला आत्मा जैसा-जैसा चिन्तन करता है वैसा-वैसा फल प्राप्त करता है। दृढ़ निश्चय वाले मन अपनी भावना के अनुसार ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिये प्रयत्न करते हैं। जैसी भावना का दृढ़ अभ्यास हो जाता है वैसा ही अनुभव होने लगता है स्वयं तो न नीम कड़वा है और न गन्ना मीठा, न आग गरम, और न चन्द्रमा शीतल। जिस विचार का जीव के हृदय में दृढ़ अभ्यास हो जाता है वही विचार चाहे वह कितना ही दुःखदायी क्यों न हो बारबार उदय होता है और जीव को अपनी ओर खींचता रहता है। आत्मा यद्यपि आकाश पत्थर और दीवार आदि सब ही वस्तुओं में वर्तमान है, तो भी जैसे केवल शीशे में ही वस्तुओं का प्रतिबिम्ब पड़ता है, आत्मा का दर्शन केवल चित्त में ही होता है। जब चित्त वृत्तिहीन होकर चित्त भाव को त्याग देता है, तब अपने भीतर विस्तृत आकार वाली मोक्ष मयी आत्मसत्ता का अनुभव करता है।

मुख्य शब्द : योगवासिष्ठ, मन, श्रीमद्भागवद्गीता, आयुर्वेद, वेद ।

प्रस्तावना : "एतच्छास्त्रघनाभ्यासात्पौनःपुन्येन क्षणात् ।

परा नागरतोदेति महत्त्वगुणशालिनी ॥ 1 ॥

बोधस्यापि परं बोधं बुद्धिरेति न संशयः ।

“जो योगवासिष्ठ पढ़ता है वह जरूर ही ज्ञानी हो जाता है”। योगवासिष्ठ संस्कृत भाषा का एक बृहत् पन्थ है जो योगवासिष्ठ महारामायण, महारामायण, आर्ष रामायण, वासिष्ठरामायण, ज्ञानवासिष्ठ और वासिष्ठ आदि नामों से भी ज्ञात है। इस शास्त्र(योगवासिष्ठ) के बार बार पढ़नेसे और इसमें प्रतिपादित सिद्धान्तोंको भलीभाँति व्यवहारमें लानेसे मनुष्य में महान गुणोंवाली नागरिकता का उदय होता है। इस ग्रन्थ के श्रवण से बुद्धि में परम ज्ञान का उदय हो जाता है और जीवन्मुक्ति का अनुभव होने लगता है।

यह शास्त्र सुबोध है। अलङ्कारों से विभूषित है। सुंदर और रसपूर्ण काव्य है। और इसके सिद्धान्त दृष्टान्तों द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिए इस ग्रंथ का श्रवण, मनन और निदिध्यासन कर लेने पर तप, ध्यान और जप आदि किसी साधन की आवश्यकता नहीं रहती। यह ग्रंथ सब दुःखों का क्षय करने वाला, बुद्धि को अत्यन्त आश्वासन देने वाला, और महा आनन्द प्राप्ति का एकमात्र साधन है। जो इसको नित्य श्रवण करता है उस प्रकाशमयी बुद्धि वाले को बोध से भी परे का बोध हो जाता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है मन का जैसे स्वरूप अनन्त है वैसे ही उसकी शक्तियाँ भी अनन्त और अपार हैं। मन में सब प्रकार की शक्तियाँ हैं। मन जगत् की सृष्टि करता है, और सृष्टि के करने में वह पूर्णतया स्वतन्त्र है। प्रत्येक मन में इस प्रकार की स्वतन्त्र शक्ति है। प्रत्येक मन जो चाहे वह सम्पादन कर सकता है। हमारी सब परिस्थिति हमारे मन के विचारों अनुरूप मन की शक्ति द्वारा ही रची हुई है। जैसी दृढ़ जिसकी भावना होती है वैसा ही उसको शक्ति का प्रकाश होता है। दृढ़ निश्चय और अभ्यास द्वारा मन जो चाहे सो प्राप्त कर लेता है। जैसा जिसका मन है वैसी ही उसकी गति होती है। भौतिक शरीर भी मन का ही रचा हुआ है इसका आकार और रूप मन के ही आधीन है। मन शरीर को अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिये इस प्रकार बनाता है जैसे कुम्हार अपनी इच्छा के अनुसार वर्तन को बनाता है। शरीर के सब रोग मानसिक अशान्ति, व्यथा और असामञ्जस्य से उत्पन्न होते हैं, और इनके दूर हो जाने पर दूर हो जाते हैं। शरीर के रोगों का नाम व्याधि है और मन के रोगों का नाम आधि है। आधि से व्याधि की उत्पत्ति होती है और आधि के दूर हो जाने पर व्याधि दूर हो जाती है। आधि और व्याधि दोनों की जड़ मूल आधि अर्थात् आत्मा का अज्ञान है। उसके ज्ञान द्वारा दूर हो जाने पर आधि व्याधि सब ही समूल नष्ट हो जाती हैं। जीवन को शान्त और सुखी बनाने का उपाय भी मन को शुद्ध, उच्च और महान् बनाना ही है। जीवन को सब प्रकार सुखी और निरोग रखने का एकमात्र उपाय है मन की शुद्धि।

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।

यत्र चौवात्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥ गीता 6.20॥

मन से बड़ा बहुरूपी ना कोई, पल पल रचता स्वांग निराले
माया ममता में उलझा रहे वो, पड़ जाये जो मन के पाले
मन के बहकावें में न आ, मन राह भुलाये भ्रम में डाले
तू इस मन का दास ना बन, इस मन को अपना दास बना ले
मन हैं शरीर के रथ का सारथी, रथ को चाहे जिधर ले जाये
इन्द्रियाँ हैं इस रथ के घोड़े, घोड़ों को विषयों की ओर भगाये
आत्मा और शरीर के मध्य में, ये मन अपने खेल दिखाये
मन को वश में कर ले जो योगी, वो इसी रथ से मोक्ष को जाये
मन को वश में कर ले जो प्राणी, वो इसी रथ से अनंत को जाये
“लक्षणं मनसो ज्ञानस्याभावो भाव एव च।

सति ह्यात्मेन्द्रियार्थानां सन्निकर्षे न वर्तते ॥च.शा. 1/18॥

‘वैवृत्यान्मनसो ज्ञानं सान्निध्यात् तच्च वर्तते।’

आत्मा, इन्द्रिय और इन्द्रियों के अपने-अपने अर्थों (विषयों) का जब मन के साथ सन्निकर्ष (संयोग) होता है तब ज्ञान होता है। अतः एव आत्मा, इन्द्रिय और इन्द्रियों के अर्थों का जब मन के साथ संयोग नहीं होता है तब ज्ञान का अभाव होता है। इस प्रकार ज्ञान का होना अथवा न होना मन का लक्षण है।

1. योगवासिष्ठ और भगवद्गीता: योगवासिष्ठ के निर्वाण प्रकरण के पूर्वार्द्ध के 12-58 सर्गों में “अर्जुनोपाख्यान” नामक एक कहानी है। उसमें वसिष्ठजी ने रामचन्द्र जी को यह कहा –

पाण्डोः पुत्रोऽर्जुनो नाम सुखं जीवितमात्मनः ।

क्षिपयिष्यति निर्दुःखं तथा क्षेपय जीवितम् । ।

अर्थात् जिस प्रकार पाण्डु का पुत्र अर्जुन अपने जीवन को बिना दुःख के बितावेगा उसी प्रकार तुम भी अपने जीवन को बिताओ ।

तब राम ने प्रश्न किया –

भविष्यति कदा ब्रह्मन् सोऽर्जुनः पाण्डुनन्दनः ।

कीदृशीं च हरिस्तस्य कथयिष्यत्यसक्तताम् ॥ (3152/90)

अर्थात् ब्रह्मन् ! वह पाण्डुपुत्र अर्जुन कब होगा और हरि उसको किस प्रकार की असक्तता का उपदेश देंगे ।

तब वसिष्ठजी ने राम को यह बतलाया कि एक समय ऐसा आवेगा कि लोग बहुत ही घोर पापवृत्ति के हो जायेंगे और युधिष्ठिर और दुर्योधन में बड़ा भारी संग्राम होगा। उस संग्राम के आरम्भ में अर्जुन को विषाद होगा और वह युद्ध नहीं करेगा। तब हरि उसको प्रबोधित करेंगे यह प्रबोध वसिष्ठ ने रामचन्द्रजी को सुनाया है।

2. मन का स्वरूप: संकल्प करने का नाम मन है मन संकल्प से भिन्न कुछ नहीं है— जैसे जल द्रवत्व (पतलेपन) से और वायु स्पन्दन से भिन्न कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। जहाँ संकल्प है वहीं मन है। मन संकल्प से भिन्न कभी किसी प्रकार नहीं है। विषयों का चित् (आत्मा) में उदय होना ही मन है। परम पुरुष (आत्मा) के संकल्पमय होने का नाम ही चित्त (मन) है। अनन्त, सर्वशक्तियुक्त महान आत्मा के संकल्प शक्ति द्वारा रचे हुए रूप का नाम मन है। ब्रह्म की यह संकल्पानुसार कार्य करने वाली कहना नामवाली शक्ति अबच्छेदयुक्त (परिमित रूपवाली) और त्याग और ग्रहण करनेवाली है। (अर्थात् इसका कार्य किसी खास पदार्थ को प्राप्त करना और किसका त्याग करना है)। यह अनन्त परमतत्त्व को विषय न करती हुई उसको अनेक पदार्थों के रूप में विभाजित सा करती रहती है और उन कल्पित पदार्थों में किसी को अच्छा और किसी को बुरा निर्धारित करती रहती है। वह मन (नामक शक्ति) अपने आप ही स्वतन्त्रता पूर्वक नित्यप्रति संकल्पों की रचना करता रहता है, उसी के द्वारा यह विस्तृत माया का जाल (जगर) बना जाता है। आत्मा का यह मलीन और कलङ्कवाला (भीतर मेलवाला क्योंकि शुद्ध स्वरूप से च्युत हो गया है) स्पन्दन, जो मन कहलाता है, न सर्वथा जड़ ही है और न चेतन । आत्मा की इस विषय की ओर दौड़ने वाली कलना का आत्मभाव तो चेतन है, चेत्य अंश (विषय भाग) जड़ है। मलीन चित् (आत्मा) का स्वयं कल्पना किया हुआ जड़ और चेतन दोनों स्वरूपवाला रूप मन कहलाता है—वह कभी जड़ और कभी चेतन हो जाता है। (ब्रह्म का वह) महान् स्वरूप जो कि संकल्पात्मक है ब्रह्म रूप से चेतन है और दृश्य रूप से जड़ है। जब अपने स्वयं प्रकाश आत्मस्वरूप का विस्मरण होकर कर्तृत्वपन का ही निश्चय रहता है और ध्यान केवल एक विषय की ओर ही रहता है उस समय आत्मा का रूप मन होता है। मन भावनामात्र है, भावना स्पन्द धर्मवाली होती है, और क्रिया की कल्पना करती रहती है जो कि किसी न किसी फल के रूप में परिणत होने के लिये दौड़ती रहती है—अर्थात् किसी पदार्थ की रचना करती है। दृश्य के अतिरिक्त मन का और कोई रूप नहीं है। स्पन्दन के लिये उत्सुक चित् (आत्मा) भ्रमित—सी हो कर अपने आपको दृश्य रूपसे अन्य सी अनुभव करती हुई विभाजित न होते हुए भी अपने एक भाग जैसे रूप को धारण कर लेती है। अपने नित्य एक स्वरूप को भूल कर जो चिति (चेतन स्वरूप आत्मा) की स्थिति है उसका नाम चित्त

(मन) है—उससे ही इस जगत की उत्पत्ति हुई है। वास्तव में मन जो कि सत्-रूप ही है (अर्थात् आत्मा ही है) न बाहर है और न हृदय के भीतर है। वह तो आकाश की नाई सर्वत्र स्थित है। मन सूक्ष्म आकार वाला है, स्थूल भाव को वह अधिक समय तक भावना करते रहने से प्राप्त होता है।

3. मन और ब्रह्म का भेद: चेत्य (दृश्य) से रहित चित् (आत्मा) सनातन ब्रह्म है। वही चित् (आत्मा) चेत्य (दृश्य) युक्त यह मन कहलाता है। वह ब्रह्म ही दृश्य भाव से किंचित स्पर्श हो जाने पर मन हो जाता है। मन हृदय की कल्पना के समान सत् और असत् रूप है। जिस प्रकार सोने और उससे बने हुए कयादि गहनों में एक विलक्षण भेद का सम्बन्ध है वैसे ही आत्मा और उसके मनरूपी भावनात्मक रूप में एक विलक्षण भेद का सम्बन्ध है। चिन्मात्र आत्मा और अहंकार (मन) में इस प्रकार तनिक भी भेद नहीं है जैसे कि वायु में और उसके स्पन्दन में और आकाश में और शून्यत्व में नहीं है।

4. मन के अनेक नाम और रूप: जैसे एक ही नट (नाटक का पात्र) अनेक रूप धारण कर लेता है वैसे ही भिन्न-भिन्न कामों को करते समय मन भी अनेक नाम और रूपों को धारण कर लेता है। जैसे एक ही मनुष्य अनेक अधिकारों (पदों) पर कार्य करते हुए अनेक नाम और रूपों को धारण करता है वैसे ही मन भी अनेक प्रकार के कार्य सम्पादन करते हुये अनेक नामरूपवाला होता रहता है। जैसे एक ही मनुष्य स्नान, दान, ग्रहण आदि अनेक क्रियाओं को करते समय विभिन्न प्रकार का हो जाता है वैसे मन भी भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियाओं को करते समय विभिन्नता को प्राप्त होता है। नाना प्रकार की क्रियायें करते समय मन के अनेक नाम होते हैं कृकभी यह जीव कहलाता है, कभी वासना, और कभी कर्म इत्यादि।

(अ) मन रूपरम चित् (शुद्ध चेतन आत्मा) जब स्पन्दनयुक्त होकर कल्पनात्मक रूप को धारण करके विषय (दृश्य) से गर्भित होती है तब वह मन होती है।

(आ) बुद्धि रूवही परम चित् जब एक परिमित रूप को धारण करके विषयों की भावना करके यह अमुक विषय है, वह अमुक इस निश्चय को धारण कर लेती है तब बुद्धि कहलाती है। यह पदार्थ इस प्रकार का है—इस स्पष्टज्ञान के कारण इसका नाम बुद्धि है।

(इ) अहंकार: “मैं हूँ” इस भावना के होने पर वह अहङ्कार कहलाती है। जब कि वह मिथ्या अभिमान के कारण अपने आप ही अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाकर संसार के बन्धन में पड़ जाती है तो उसका नाम अहङ्कार होता है।

(ई) चित्त: जब वह बालक की नाई चञ्चल कलना बिना विचारे ही एक विषय को छोड़कर दूसरे विषय का चिन्तन करती रहती है तब वह चित्त कहलाती है।

(उ) कर्म: स्पन्दन (क्रिया) ही जिसका एक स्वभाव है ऐसी वह कलना अपने भीतर शून्यता का अनुभव करके जब क्रिया द्वारा प्राप्त होने वाले किसी फल की ओर दौड़ती है तब वह कर्म कहलाती है।

(ऊ) कल्पना: जब वह कलना अकारण ही (अकस्मात्) अपने पूर्व प्राप्त विषय की उपेक्षा करके अप्राप्त इच्छित विषयों की कल्पना करने लगती है तब उसका नाम कल्पना होता है।

(ए) स्मृति: पूर्व काल में किसी वस्तु का अनुभव हुआ हो अथवा न हुआ हो किन्तु उसका निश्चय के साथ जब ऐसा ध्यान आये कि यह वस्तु पूर्व काल में अनुभूत हो चुकी है तब मन स्मृति कहलाता है।

(ऐ) वासना: जब किसी ऐसे पदार्थ की इच्छा, जिसका भोग अभी तक वास्तव में नहीं, केवल मन ही में हुआ हो, इतनी दृढ़ हो जाती है कि उसके सामने और किसी वस्तु की इच्छा न रहे, तब मन वासना कहलाता है। आगे पीछे का विचार छोड़कर जब किसी वस्तु को प्राप्त करने की दृढ़ भावना होती है उसको वासना कहते हैं।

(ओ) अविद्या: वास्तव में शुद्ध आत्मतत्त्व ही एक पदार्थ है। जब वस्तुतः विद्यमान न होते हुए भी आत्मा से अतिरिक्त किसी दूसरे तत्त्व का भान होने लगे तब इसका कहते हैं कि ज्ञान होने पर जाने पर आत्मतत्त्व के नाम अविद्या है। इसको अविद्या इसलिये यह विद्यमान नहीं रहती (अर्थात् ज्ञान हो अतिरिक्त और किसी वस्तु का भान नहीं होता)। यह अविद्या अनन्त प्रकार की है और नाना प्रकार के भ्रमों की उत्पादक है।

(औ) मल: नाना प्रकार की मिथ्या कल्पनाओं द्वारा परमपद को भुला कर आत्मा की हानि कराने के कारण इसका नाम मल होता है।

(अ) माया: सत्ता को असत्ता अथवा सदसत्ता (सत् और असत् दोनों) बनाने की सामर्थ्य होने से इसको माया कहते हैं।

(अ:) प्रकृति: परमात्मा का ज्ञान न होने पर, इस दृश्य संसार के सब भावों का कारण होने के कारण यह प्रकृति कहलाती है।

(क) ब्रह्मा इत्यादि: सृष्टि करने में लगा हुआ मन कभी ब्रह्मा कहलाता है, कभी विराट, कभी सनातन, कभी नारायण, कभी ईश्वर और कभी प्रजापति।

(ख) जीव: जीने और चेतन होने के कारण ही यह जीव कहलाता संसार में चेतन पदार्थ का नाम जीव और पशु है।

(ग) आतिवाहिक देह: यह सादि और सान्त, आकार रहित और अनामय कलना श्रुतिवाहिक देह कहलाती है।

(घ) इन्द्रिय: इसको इन्द्रिय इसलिये कहते हैं कि सुनकर, छूकर, देखकर, भोगकर, सुँघकर और विचार कर यह आत्मा को, जो कि इस शरीर का इन्द्र (राजा) है, आनन्द देता है।

(ङ) पुर्यष्टक: पक्के संकल्पों से भरपूर होने के कारण इसको पुर्यष्टक कहते हैं।

(च) देह, पदार्थ आदि: शरीर की भावना होने पर यह शरीर बन जाता है और घट आदि पदार्थों की भावना से यह घट आदि पदार्थ हो जाता है।

(छ) इस विषय में योगवासिष्ठ का अन्य दर्शनों से मतभेद: ऊपर वर्णन किये हुये ये सब मन, बुद्धि, अहंकार आदि— स्पन्दयुक्त कलंक को प्राप्त, दृश्य की ओर प्रवृत्त चित्ति (आत्मा) के अनेक नाम हैं। यहाँ पर जो ये सब नाना प्रकार की कल्पनाएँ— अहंकार, मन, बुद्धि आदि एक ही वस्तु के नामरूप बतलाए गये हैं, वे न्याय, सांख्य, चार्वाक, मीमांसा, जैन, बौद्ध, वैशेषिक, पाश्चरात्र आदि दूसरे दर्शनों में भिन्न—भिन्न रीति से वर्णन किये गये हैं।

5. संसार के सब पदार्थों के भीतर मन है: संसार की सब ही वस्तुओं के भीतर चित्ति (मन) वर्तमान है। जड़ पदार्थों के भीतर भी वासना ऐसे मौजूद है जैसे कि बीज के भीतर पुष्प आदि और मिट्टी में घड़ा। स्थावर (जड़) पदार्थों के भीतर भी वासनाओं की बीजरूपी चित्ति शक्ति सोती हुई अवस्था में उनके रस के रूप में सदा वर्तमान रहती है। यह शक्ति बीजों में उल्लास के रूप में, जड़ पदार्थों में जड़ता के रूप में, द्रव्यों में द्रव्य भाव से और कड़ी वस्तुओं में काठिन्य के रूप में प्रगट होती है। जिस प्रकार लता के भीतर रहने वाला रस, फूल और फल के आकार में विकसित होता है, उसी प्रकार प्राणियों के वीर्य के रस के भीतर वास करती हुई यह चित्ति सब चेतन वस्तुओं का विकास करती है।

6. मन की अद्भुत शक्तियाँ: मन सर्वशक्तिमय, सर्वगत, और अनन्त परम ब्रह्म का ही एक कल्पनात्मक आकार है। मन का ब्रह्म के साथ तादात्म्य सम्बन्ध हैय मन और ब्रह्म दो अलग वस्तुएँ नहीं हैं। ब्रह्म ही मन का आकार धारण करता है।

1. मन सर्वशक्ति सम्पन्न है: मन जगत् को रचनेवाला है, मन ही स्वयं पुरुष है। मन में सब प्रकार की शक्तियाँ हैं और मन सब कुछ कर सकता है। मन जिस वस्तु के प्राप्त करने का इरादा कर लेता है उसे अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। मन अपने भीतर जैसी भावना करता है क्षण भर में वैसा ही हो जाता है। जो कल्पना चित्ति के अन्दर उदय होती है वही बाह्य जगत् में स्थिर और फलयुक्त होकर प्रकट होती है।

2. मन में जगत् के रचने की शक्ति है, मन का स्वभाव संकल्प है। जैसे जगत् की मन कल्पना करता है संकल्प द्वारा वैसा ही जगत् निर्मित हो जाता है। अहंभाव (मन) को ही जगत् का बीज समझना चाहिये। इस बीज से ही पहाड़, समुद्र, पृथ्वी और नदियों वाले जगत् रूपी वृक्ष की उत्पत्ति होती है। चित्ति ही जगत् का उत्पादक है।

3. मन जगत् की रचना में पूर्णतया स्वतन्त्र है: मन अपने आप ही स्वतंत्रतापूर्वक शरीर की रचना करता है देहभाव को धारण करके वह जगत् रूपी इन्द्रजाल की रचना करता है।
4. प्रत्येक मन में इस प्रकार की शक्ति है: प्रत्येक चित्त में इस प्रकार की जगत् के उत्पादन करने की शक्ति है। प्रत्येक चित्त में जगत् रूपी भ्रम का उदय पृथक्-2 होता है।
5. जीव में सब कुछ प्राप्त करने की अनन्त शक्ति है: जीव जो कुछ चाहता है वह सब अपने आप ही सम्पादन कर लेता है। प्रत्येक जीव में चित्-शक्ति (आत्मा की अनन्त और अपार शक्ति) वर्तमान है। जीव में जिस जिस प्रकार की शक्ति का उदय होता है उसी उसी प्रकार का फल उसको प्राप्त होता है। अपने ही प्रयत्न के सिवाय कभी और कोई हमको सिद्धि देनेवाला नहीं है। इसलिये जो कुछ प्राप्त करना चाहते हो उसके लिये प्रयत्न करो।
6. विषयों का रूप हमारे चिन्तन के आधीन है: संसार के सब पदार्थों का रूप हमारे चिन्तन पर निर्भर है। चिन्तन करते-करते असत्य पदार्थ भी सत्य प्रतीत होने लग जाता है। जिस वस्तु का जिस भाव से चिन्तन किया जाता है वह वस्तु उसी प्रकार से अनुभव में आने लगती है। मित्र बुद्धि से शत्रु मित्र हो जाता है और शत्रु बुद्धि से मित्र शत्रु बन जाता है। जैसा हमारा विचार वैसा हमारा जगत्।
7. जैसी दृढ़ जिसकी भावना वैसा ही फल: दृढ़ अभ्यास के द्वारा जो मनुष्य अपने मन में जिस प्रकार के भाव को स्थिर कर लेता है उसी प्रकार की उसकी वासनायें और क्रिया होने लगती हैं। भावना के कारण ही वह अपने आपको शरीर समझने लगता है। वासना के प्रभाव से ही जीव के लिये विष अमृत हो जाता है और असत्य पदार्थ भी सत्य हो जाता है। जैसी जिसकी भावना होती है वैसा ही उसका अनुभव होता है।
8. अभ्यास का महत्त्व— किसी काम को बार बार करने का नाम अभ्यास है उसीको पुरुषार्थ भी कहते हैं। बराबर अभ्यास (यत्न) करने से नामुमकिन (असम्भव भी मुमकिन (सम्भव) हो जाता है शत्रु मित्र हो जाते हैं और विष अमृत हो जाता है।
9. मन के दृढ़ निश्चय की शक्ति: मन के दृढ़ निश्चय को मिटाने या रोकने की किसी में शक्ति नहीं है। जिसके मन में जो निश्चय दृढ़ हो गया है उसको उसके सिवाय और कोई नहीं हटा सकता। बहुत समय तक जो बात किसी के मन में गहरे तौर पर बैठ गई है वह शरीर के नष्ट होने पर या शाप द्वारा भी नहीं मन से हटती।
10. जैसा मन वैसी गति: जैसा जिसका विचार वैसा ही उसका मन, और जैसा मन वैसी ही उसकी स्थिति होती है।
11. दुःख सुख भी चित्त के आधीन हैं: मनुष्य मनोमय है अर्थात् जैसा किसी का मन वैसा ही वह मनुष्य होता है। शुभ या अशुभ कर्मों का करनेवाला मन ही है इसलिये सुख-दुःख का भोगनेवाला मनुष्य मन ही है। हाड़ मांस से बना हुआ शरीर सुखदुःखों को भोगनेवाला नहीं है सब शरीरों में मन ही को सुख या दुःख का अनुभव होता है।
12. जीव की परिस्थितियाँ उसके मन की रची हुई हैं: यह हमारा दृश्य जगत् चित्त की इच्छाओं द्वारा निर्मित है और इच्छाओं के न रहने पर लीन हो जाता है। चित्त द्वारा रचा हुआ यह एक महान् स्वप्न है। जहाँ पर जिसने जैसी इच्छा दृढ़ कर ली है वहीं पर वह उसी प्रकार से फल देती है।
13. शरीर भी मन का ही बनाया हुआ है: मन शरीर को अपने सङ्कल्पों द्वारा इस प्रकार बनाता है जैसे कि कुम्हार घड़े को। यह शरीर क्या है— केवल पूर्व काल की, अभ्यास द्वारा दृढ़ हुई, वासनाओं की एक आकारवाली मूर्ति। देहभावना से मन को देहत्व का अनुभव होता है और देहभावना से स्वतन्त्र हो जाने पर देह के धर्मों का मन को अनुभव नहीं होता।
14. मानसी चिकित्सा: शरीर के सब रोग विचार और जीवन की अशुद्धि के कारण होते हैं। उनके दूर करने का सबसे उत्तम उपाय विचारों और जीवन को शुद्ध करना है। जब मन शुद्ध और पवित्र होता है और वासना उच्च कोटि की होती है तब शरीर निरोग और सुन्दर रहता है। ये सब विचार आजकल

के समय में "क्रिश्चियन साइंस" के नाम से पाश्चात्य देशों में बहुत प्रचलित होते जा रहे हैं। और बहुत ही नवीन और महत्वपूर्ण समझे जाते हैं, किन्तु भारतवर्ष में इस प्रकार के विचार सहस्रों वर्ष पूर्व प्रचलित थे। योगवासिष्ठ इस प्रकार के विचारों की अनुपम निधि है।

(अ) आधि मौर व्याधि: शरीर के दुःखों का नाम व्याधि है और मानसिक दुःखों का नाम आधि है। दोनों मूर्खता से उत्पन्न होती हैं और तत्वज्ञान से दोनों का क्षय हो जाता है।

(आ) आधि से व्याधि की उत्पत्ति: मानसिक रोगों से शरीर के रोगों की उत्पत्ति होती है और उनके नाश होने पर इनका भी नाश हो जाता है।

(इ) आधि के क्षय होने पर व्याधि का क्षय: आधियों (मानसिक रोगों) के क्षीण हो जाने पर उनसे उत्पन्न होने वाली व्याधियाँ (शारीरिक रोग) भी मिट जाते हैं। शुद्ध और शुभ कर्मों के करने से और सज्जनों के सह से मन इस प्रकार निर्मल हो जाता है जैसे कि सान पर चढ़ाने से सोना और चित्त के शुद्ध हो जाने पर शरीर में आनन्द (निरोगता) का संचार होने लगता है।

(ई) मन्त्र चिकित्सा: मन्त्रों के अक्षरों में भी उसी प्रकार शरीर पर असर करने की शक्ति है जैसे कि दवाइयों में। किन्तु मन्त्रों का प्रभाव भावना द्वारा होता है।

(उ) मूलव्याधि (अज्ञान)रूलौकिक रोगों की शान्ति तो यथोचित वस्तु प्राप्त हो जाने पर हो जाती है, किन्तु जो मूल रोग है, उसकी शान्ति आत्म-ज्ञान प्राप्त किये बिना नहीं होती।

(ऊ) जीवन को सुखी और निरोग रखने का उपाय: मैं शरीर हूँ इस प्रकार की भावना से जीव शरीर के धर्मों का अनुभव करता है, और इस भावना से रहित होने पर जीव को शरीर के गुणों का अपने में अनुभव नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से अटल धैर्य को धारण करके स्थिर रहे तो उसके पास दुःख नहीं फटक सकते। ऐसे पुरुष के मन को आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शरीर के रोग) शाप और कुदृष्टि (बुरी नजर) आदि कुछ भी इस प्रकार हानि नहीं पहुंचा सकता जैसे कमल दंड से पीटने से पर्वत को कुछ नहीं होता। (वसिष्ठ जी ने जब काकभुशुसिड मुनि से यह पूछा कि आप इतने दीर्घ काल से इतने निरोगी और युवा कैसे बने रहते हैं तो उन्होंने जो उत्तर दिया वह यह है रु) मैं सदा निरोगी इस वजह से रहता हूँ कि, इष्ट और अनिष्ट के होने और न होने की चिन्ता को त्याग कर मैं आत्मभाव में स्थित रहता हूँ आज मैंने इस वस्तु को प्राप्त कर लिया, कल उस सुन्दर वस्तु को प्राप्त करूँगा इस प्रकार की चिन्ता मुझे नहीं होतीय मेरा मन चपलता और शोक से रहित शान्त और समाहित है।

15. मन के शान्त और महान् होने पर ही सब ओर आनन्द का अनुभव होता है: मन सब कुछ है, मन की अपने भीतर ही चिकित्सा करने से सारा संसार ठीक हो जाता है। अपने भीतर ही यदि शान्ति प्राप्त हो गई, वो सारा संसार शान्त दिखाई पड़ने लगता है। जो अपने भीतर ही तृष्णा की आग से जल रहा हो उसके लिये सारे संसार में आग सी लगी रहती है। चित्त को महान बनाने से जो फल प्राप्त होता है वह न तीनों लोक (पृथ्वी, पाताल और स्वर्ग) के ऊपर राज्य करने से, न रत्नों से भरे हुए खजाने के मिलने से होता है। मन के पूर्ण होनेपर सारा संसार अमृत से भरपूर दिखाई पड़ता है, जैसे कि जूता पहने हुए पुरुष के लिये समस्त पृथ्वी चमड़े से ढकी हुई सी प्रतीत होती है।

16. शुद्ध मनमें ही आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है: यद्यपि आकाश सब जगह मौजूद है तो भी उसका प्रतिबिम्ब केवल शोशे में ही पड़ता है। ऐसे ही यद्यपि आत्मा सब जगह वर्तमान है तो भी उसका दर्शन केवल मन के भीतर ही होता है।

17. जब तक मन में अज्ञान है तभी तक जीव संसार रूपी अन्धकार में पड़ा रहता है: गड्ढे के कछुवे के समान जब तक अज्ञानी मन आत्मा को भूलकर मूर्खतावश भोगों के मार्ग पर चलता रहता है तब तक संसाररूपी अन्धेरा किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सकता, चाहे आग और चन्द्रमा— सहित बारहों सूर्य भी अपना प्रकाश कर लें।

18. मन जगत् रूपी पहिये की नाभि है भ्रम पैदा करनेवाले, घूमनेवाले, संसाररूपी मायाचक्र की नाभि चित है। इस नाभि को बुद्धि और पुरुषार्थ द्वारा जोर से पकड़कर रोक लेने से मायाचक्र की गति रुक जाती है।

7. सिद्धियाँ—

योगवासिष्ठ में सिद्धियों के प्राप्त करने के दो विशेष मार्ग हैं। एक मन की शुद्धि और दूसरा कुण्डलिनी शक्ति का उद्बोधन। मनुष्य का मन शक्ति का भण्डार है— क्योंकि वह मन का ही एक आकार है। मन को जितना शुद्ध किया जाए वह उतना ही बलवान् और शक्तिशाली होता चला जाता है। मन के व्यतिरिक्त मनुष्य के शरीर में भी शक्ति का एक महान केन्द्र है जिसमें जीव की अनन्त और अद्भुत शक्ति सोती रहती है। यदि योगमार्ग द्वारा उस शक्ति को जिसको योगशास्त्र में कुण्डलिनी के नाम से पुकारा गया है कृजगा दिया जाए तो मनुष्य को अनेक प्रकार की योग्यताएं, जो कि साधारण मनुष्य को प्राप्त नहीं हैं, प्राप्त हो जाती हैं। उस महान् शक्ति के उपयोग से मनुष्य मन चाही बातें कर सकता है। ऐसी शक्तियों को प्राप्त कर लेने को, जो कि साधारणता से लोगों को प्राप्त नहीं हैं, सिद्धि कहते हैं।

(1) मन की शुद्धि द्वारा प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ शुद्ध मन जिस वस्तु की जैसी भावना करता है वह अवश्य ही जल्द ही वैसी ही हो जाती है—जैसे जल भँवर का रूप धारण कर लेता है।

(अ) दूसरों के मन का ज्ञान— जैसे समान रूपवाले जल ही आपस में मिलकर एक होते हैं उसी प्रकार शुद्ध मनों में ही परस्पर एकता हो सकती है।

(आ) सूक्ष्म लोकों में प्रवेश करने की सिद्धि— जैसे छाया का धूप में प्रवेश नहीं हो सकता, वैसे ही वे लोग जिनकी बुद्धि में जागृति नहीं हुई, पुण्य कर्मों द्वारा प्राप्त होने वाले सिद्ध लोकों में अपने शरीर द्वारा प्रवेश नहीं कर सकते। दूसरे लोक में प्रवेश पवित्र शरीर, ज्ञान और विवेक, पवित्र कर्म अथवा वर द्वारा होता है। इसलिये अतिवाहिक (सूक्ष्म) लोकों में उन्हीं लोगों का प्रवेश होता है जो या तो ज्ञानी (अर्थात् जो जानने योग्य सब तत्वों को जानते हैं) हो या जिनका जीवन पूर्णतया धार्मिक हो। जब सूक्ष्मतत्वों का ज्ञान पूर्णतया स्थिर हो जाता है, तब मनुष्य को संकल्प रहित पवित्र सिद्ध लोकों का दर्शन होता है।

(इ) आधिभौतिकता की भावना के कारण जीव को सूक्ष्म लोकों का दर्शन नहीं होता— जिसके मन में यह भ्रम दृढ़ हो गया है कि मैं आधिभौतिक (स्थूल) शरीर हूँ वह भला सूक्ष्म मार्ग द्वारा दूसरे लोकों में कैसे जा सकता है ?

(ई) सूक्ष्मभाव ग्रहण करने की शक्ति— जैसे गर्भ की अवस्था की यौवन काल में याद नहीं रहती उसी प्रकार जिसके मन में यह भावना दृढ़ हो गई है कि मैं सूक्ष्म हूँ, वह अपने स्थूल भाव (स्थूल शरीर) को बिल्कुल भूल जाता है। वासनाओं के जीर्ण होने पर अवश्य ही शरीर में सूक्ष्मभाव का उदय हो जाता है। संसार के पदार्थों की वासनाओं के कम हो जाने पर ज्ञान और अभ्यास द्वारा स्थूल शरीर में ही सूक्ष्म शरीर के अनुभव का उदय हो जाता है।

(उ) ज्ञान द्वारा स्थूलभावना की निवृत्ति— शरीरको सत्य समझनेसे ही शरीर सत्य मालूम पड़ता है, इसको असत्य जान लेनेपर इसका अनुभव नहीं रहता।

(2) कुण्डलिनी शक्ति के उद्बोधन द्वारा प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ—

(अ) कुण्डलिनी— मनुष्य के शरीर के उदर भाग में नाभि के आसपास एक ऐसा स्थान है जहाँपर एक इस प्रकार का चक्रा— कार अङ्ग है जिसमें जीव की परम शक्ति सुप्तरूप से वर्तमान है। पाँचों ज्ञान— इन्द्रियों का बीज कुण्डलिनी, शक्तिमें स्थित है और प्राणोंके द्वारा वह बीज संचालित होता है। वह कुण्डलिनी शक्ति, स्पन्दन, स्पर्श और ज्ञान सब की शुद्ध कला है। संकल्पयुक्त होने से उसका नाम कला है और चेतन होने से उसका नाम चिति है। जीने से जीव, मनन करने से वह मन और बोध प्राप्त होने से बुद्धि होती है। वही शक्ति अहंभाव को प्राप्त होकर पुर्यष्टक कहलाती है। सब शक्तियों की परम शक्ति वह कुण्डलिनी शक्ति शरीर में स्थित है।

(आ) कुण्डलिनी योग द्वारा सिद्धियों की प्राप्ति— उस कुण्डलिनी में पूरक प्राणायाम के अभ्यास से जब प्राणी समरूप से स्थित हो जाता है तब सुमेरु के समान स्थिरता और गुरुता की सिद्धि हो जाती है।

(इ) सूक्ष्मता और स्थूलता की सिद्धि कैसे होती है— दृढ़ भावना द्वारा वह हड्डियों की इस प्रकार रचना कर लेती है जैसे कि माता के गर्भाशय में पड़ा सूक्ष्म बीज स्थूल आकार को धारण कर लेता है। तब वह जीव-शक्ति इच्छा अनुसार बड़े से बड़ा (सुमेरु के समान) और छोटे से छोटा (तृण के समान) आकार धारण कर सकती है।

(3) प्राणायाम द्वारा भी अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं— प्राणों को बस में कर लेने पर प्रत्येक मनुष्य राज्यप्राप्ति से लेकर मोक्षप्राप्ति तक सब ही प्रकार की सम्पत्तियों को प्राप्त कर सकता है।

8. मन का लय—

(अ) मन संसारचक्र की नाभि है— संसार रूपी मायाचक्र की नाभि मन है। यदि इसको जोर से पकड़ कर स्थिर कर दिया जाये तो फिर संसार दुःख नहीं देता। मन को बुद्धि और पुरुषार्थ द्वारा बस में कर लेने पर यह माया चक्र संसार ऐसे बस में आ जाता है जैसे कि नाभि के पकड़ने से पहिया। संकल्प नामक मन को रोकने से संसार की गति ऐसे रुक जाती है जैसे कि नाभि के रोक लेने पर पहिये की गति। परम पुरुषार्थ का आश्रय लेकर बल, प्रज्ञा और युक्ति द्वारा संसार-चक्र की नाभि, मन को रोकना चाहिये। यह संसार मन के सहारे पर ही चल रहा है, मन के जीत लेने पर सब कुछ जीता जाता है। चित्त की सत्ता से जगत् की सत्ता है, जगत् की सत्ता चित्त की सत्ता हैय एक के अभाव होने पर दोनों ही का अभाव हो जाता हैय और वह होता है सत्य के विचार से। चित्त के भीतर संसार इस प्रकार है जैसे कि घड़े के भीतर घटाकाशय चित्त के नाश होने पर संसार इस प्रकार नहीं रहता जैसे कि घड़े के नाश होने पर घटाकाश नहीं रहता। वायु का चलना बन्द हो जाने पर जैसे गन्ध का आना बन्द हो जाता है वैसे ही मन के स्पन्दन (गति) के शान्त हो जाने पर प्राणों की गति भी रुक जाती है। चित्त के त्याग जाने और लीन होने पर, द्वैत और ऐक्य सब प्रकार से लीन हो जाते हैंय केवल एक शान्त और अविकार परम तत्त्व ही शेष रहता है। इस संसार रूपी खेती के खेत को चित्त कहते हैं। जब खेत ही न रहेगा तो खेती के पैदा होने की सम्भावना कहाँ है? इन सब उपद्रवों के पैदा करने वाले संसाररूपी दुःख से छूटने का एक ही उपाय है। वह है अपने मन का निग्रह। मन के विलीन होने मात्र से दुःखों की शान्ति हो जाती है और सर्वगत, शान्त ब्रह्म का अनुभव होने लगता है। अपने ही पुरुषार्थ से सिद्ध होने वाले, इच्छित वस्तुओं के त्याग स्वरूप मन के प्रशम बिना शुभ गति की प्राप्ति नहीं होती।

(आ) मन कैसे स्थूल होता है— अनात्म में आत्मभाव से, देह में विश्वास से, स्त्री, पुत्र और कुटुम्ब से, अहङ्कार के विकार से, ममता के मल से, प्यह मेरा है इस भाव से, व्यर्थ वृद्धि को प्राप्त होने वाले दोषों के कोश, जरा और मरण आदि देने वाले दुःखों से, उपादेय (प्राप्त करने योग्य) और हेय (त्यागने योग्य) को प्राप्त करने और त्यागने में प्रयत्न करने से, आधि और व्याधियों को प्राप्त कराने वाली संसार की आशाओं से, स्नेह से, धन के लोभ से, दूर से सुन्दर दिखाई देनेवाली मणि और स्त्रियों की प्राप्ति से चित्त स्थूल होता है। दुराशा रूपी दूध के पीने से, भोग रूपी वायु के बल से, आस्था रूपी चारे से चित्त रूपी सर्प मोटा होता है। उत्पत्ति और नाश वाले शरीर से विष के समान दुःखदायी भोगों के अधिक भोगने से चित्त स्थूल होता है।

(इ) मन किस प्रकार ब्रह्म हो जाता है— परम ब्रह्म में चित्त को लगाने से चित्त वासनारहित और शुद्ध हो जाता है। शुद्ध और वासनारहित होने पर वह कल्पनाशून्य होकर आत्मभाव को प्राप्त कर लेता है। विचार द्वारा मन विलीन हो जाता हैय और मन के लय हो जाने पर ही कल्याण होता है। मन नाम वाले उस कर्म के क्षीण होने पर जिसने कि इस भ्रम को रच रक्खा है, प्राणी जीवन्मुक्त हो जाता हैय फिर उसका दूसरा जन्म नहीं होता।

(ई) मन के निरोध करने की युक्तियाँ— जैसे मतवाला दुष्ट हाथी बिना अंकुश के नहीं जीता जा सकता वैसे ही मन भी बिना ठीक युक्ति के नहीं जीता जा सकता। जो उचित युक्ति को छोड़ कर मन को जीतने

का उपाय करते हैं वे हठी हैं उनको एक भय के पीछे दूसरा भय और एक दुःख के बाद दूसरा दुःख होता रहता है। जो (बिना युक्ति के) बलपूर्वक चित्त को जीतने का प्रयत्न करते हैं वे मूर्ख उस व्यक्ति के समान हैं जो कि उन्मत्त हाथी को कमल के तन्तुओं से बाँधना चाहता है। चित्त के ऊपर विजय प्राप्त करने की निश्चित युक्तियाँ हैं कृअध्यात्म ग्रन्थों का अध्ययन, साधुओं का सत्सङ्ग, वासनाओं का त्याग और प्राणों का निरोध। अपने ही ज्ञान और पुरुषार्थ द्वारा चित्त जितनी अच्छी तरह शान्त हो जाता है वैसा न तप से न तीर्थ से, न विद्या से न यज्ञ से, और न किसी विशेष अनुष्ठान से हो सकता है। अपने ही ज्ञानरूपी पुरुषार्थ से इच्छित वस्तुओं के त्याग से चित्तरूपी वेतालपर विजय प्राप्त होती है। विवेक द्वारा इस बात का निश्चय कर लेने पर कि मन आत्मा (चिति) का ही अंश है और दृढ़ अभ्यास के द्वारा मन आत्मा (चिति) के साथ एकता का अनुभव करता है। इच्छित वस्तु का त्याग करके जो विकार रहित स्थित हो जाता है वह मन को इस प्रकार जीत लेता है जैसे हाथी को अंकुश। भ्रम कौन हूँ और क्या हो सकता हूँ इस प्रकार का आत्मविचार वह आग है जिससे चित्तरूपी बुरे वृक्ष का बीज जलाया जा सकता है। “सब कुछ ब्रह्म ही है” इस प्रकार की भावना से जिसका अज्ञान क्षीण हो गया है उस ज्ञानी के मन में वासना का इस प्रकार उदय नहीं होता जैसे कि मरुस्थल में बादल नहीं उठता।

1. **ज्ञानयुक्ति**— जो वस्तु अज्ञान के कारण सत्य प्रतीत होती हो वह अवश्य ही ज्ञान से नष्ट हो जाती है। मैं मन नहीं हूँ—इस प्रकार मन को त्याग देने पर मन शान्त और सनातन ब्रह्म हो जाता है।
2. **संकल्पों का उच्छेदन**— संकल्प ही मन का बन्धन है, उसका अभाव ही मुक्तता है। संकल्प रहित होने से मनुष्य चित्त रहित हो जाता है, और चित्त रहित होने से मोक्ष का अनुभव होने लगता है। संकल्प द्वारा ही जगत्का मिथ्या अनुभव उत्पन्न हुआ है और संकल्प के क्षीण होने पर यह कहीं लीन हो जाता है। संकल्प के शान्त हो जाने पर संसार का सारा दुःख जड़ से नष्ट हो जाता है।
3. **भोगों से विरक्ति**— भोगों की इच्छा होना ही बन्धन है, और उसका त्याग ही मोक्ष कहलाता है। जिस जिस वस्तु से विरक्ति हो जाती है उसी उसी वस्तु से मुक्ति मिल जाती है। और शास्त्रोक्त साधनों से क्या प्रयोजन है, केवल इतना करना ही काफी है कि जो जो वस्तुएँ स्वाद देने वाली हैं उन सबको विष और अग्नि के समान भयंकर समझो। यदि प्राणी को हृदय में भोगों के प्रति विरक्ति उत्पन्न जाए तो तुरन्त ही उच्च पद की प्राप्ति हो जाती है। संसार रूपी गड्ढे में पड़े हुये प्राणी तभी तक भ्रमते रहते हैं जब तक विषयों के प्रति विरक्ति नहीं उत्पन्न होती।
4. **इन्द्रियों का निग्रह**— जो संसार के विषयों में मन को नहीं लगाते और अपने भीतर विवेक प्राप्ति का यत्न करते रहते हैं वे शान्ति का अनुभव करते हैं। उसके जीतने से सब ओर जीत होती है, जैसे कि जूता पहनने वाले के लिये सारी पृथ्वी चमड़े से ढक जाती है।
5. **वासनाओं का त्याग**— वासना को ही चित्त का स्वरूप जानो। वासना और चित्त दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। जैसे प्यह स्वप्न है इस प्रकार का ज्ञान हो जाने पर स्वप्न का शरीर असत्य मालूम पड़ने लगता है वैसे ही वासनाओं के क्षीण हो जाने पर अनुभव में आने वाला संसार भी असत् हो दिखाई पड़ने लगता है। सब इच्छाओं को त्याग देने पर शुद्ध चित्त की जो स्थिति है वह मलरहित चिति है। उसी को सत्य कहते हैं। हे राम! “यह वस्तु मेरी हो जाए” इस प्रकार की अपने भीतर की भावना को तृष्णा कहते हैं यही सबसे बड़ी जंजीर है। सब सत् और असत् पदार्थों के प्रति इस प्रकार की वासना का पूर्णतया और सदा के लिये त्याग करके महामना और उदारात्मा पुरुष परम पद को प्राप्त कर लेता है।

(अ) **तृष्णा की बुराई**— तृष्णा जरा (बुढ़ापा) और मरण के दुःखों की पिटारी है और आधि (मानसिक रोग) और व्याधि (शारीरिक रोग) को देने वाली है।

(आ) **इस संसार में न कुछ प्राप्त करने योग्य है और न कुछ त्यागने योग्य है**— आयु इतनी क्षणभर (क्षणिक) है जितना कि वायु द्वारा उड़ाकर लाया हुआ शरत् ऋतु का बादल का टुकड़ा, भोग ऐसे चल हैं जैसी कि मेघों में चमकती हुई बिजली। यौवन और सौन्दर्य जल के बहाव की नाई तेजी

से जाने वाले हैं शरीर क्षण में नष्ट होने वाला है, इसलिये हे पुत्र इन सबसे विरक्त होकर निर्वाण को प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

(इ) वासना त्याग के दो प्रकार—

1. ध्येय त्याग का स्वरूप— मैं इनके बिना और ये मेरे बिना नहीं रह सकते इस निश्चय को अपने भीतर दृढ़ करके और मन से अच्छी तरह विचार कर और यह धारणा करके कि न ये वस्तुएँ मेरी हैं और न मैं इनका शान्त बुद्धि से जो वासना का त्याग किया जाता है उसे वासना का ध्येय त्याग कहते हैं।
2. ज्ञेय त्याग— सम बुद्धिसे जो सब वासनाओं का क्षय करके और ममता रहित होकर शरीर का त्याग कर देता है उसका वासना त्याग ज्ञेय त्याग कहलाता है।

(उ) वासना को त्याग करने की तरकीब— (सांसारिक) वासनाओं को त्याग करके मोक्ष की वासना भी त्याग दो विषयों के सम्बन्ध की तामसी वासनाओं का त्याग करके मैत्री आदि शुभ वासनाओं को धारण करना चाहिये। इनके अनुसार व्यवहार करते हुए, इनको भी त्याग कर, अपने अन्दर सब वासनाओं से रहित होकर चिन्मात्र आत्मा की वासना का आश्रय लो। मन और बुद्धि से संयुक्त उस चिन्मात्र की वासना को भी त्याग करके जो कुछ शेष रहे उसमें स्थिर हो जाओ। जिस वासना के द्वारा दूसरी वासनाओं का त्याग करो उसको त्याग दो। जो व्यक्ति अपने चित्त से सब वस्तुओं का त्याग करके व्यथा से रहित हो जाता है, वही मुक्त और परम ईश्वर है जिसका मन वासना रहित हो गया है उसे न कर्म त्यागने की आवश्यकता है और न कम करने की, न समाधि की जरूरत है और न जप की।

6. अहङ्कार का त्याग— अहङ्काररूपी बादल के विलीन हो जाने पर चित्ति रूपी आकाश के निर्मल हो जाने से आत्मज्ञानरूपी सूर्य का प्रचण्ड प्रकाश होता है। यह जगत्—रूपी वृक्ष अहंभाव रूपी बीज से उदय होता है। उसको ज्ञानरूपी अग्नि से भस्म कर देने पर फिर कुछ उत्पन्न नहीं होता।

(अ) अहंभाव को विधि मिटाने की रूमें ही सारा जगत् हूँ इस विचार द्वारा जब हेय (त्याज्य) और उपादेय (प्राप्य) भाव क्षीण हो जाए और समता का अनुभव हो जाए तब अहंभाव की वृद्धि नहीं होती।

(आ) ब्रह्मभाव का अभ्यास रूप्रत्येक वस्तु को अपने विचार द्वारा उसके कारण में लय करके मन में वस्तुभाव न रख कर कारणभाव रक्खेय व्यष्टि की दृष्टि को हटाकर समष्टि की दृष्टि की, और कार्य दृष्टि को हटाकर कारण दृष्टि की स्थापना करे। ऐसा करते करते किसी समय परम कारण और परम व्यापक सत्ता— सामान्य शुद्ध चेतन ब्रह्म की दृष्टि का अनुभव हो जायेगा।

(इ) अहंभाव के क्षीण हो जाने पर सब दोषों से निवृत्ति हो जाती है रूसंसार में जो कुछ सुख—दुःख मिलता है वह सब अहंकार का विकार है। अहंकार नामक मन को वृत्ति के क्षीण हो जाने पर या क्षीण होने लगने पर, लोभ और मोह आदि दोष शुद्ध हृदय को इस प्रकार स्पर्श नहीं करते जैसे कि पानी कमल को।

7. असङ्ग का अभ्यास— आत्मा नित्य, निर्मल, निरामय और स्वयं प्रकाश चित्ति होता है और शरीर अनित्य और मलयुक्त है— भला फिर दोनों में सम्बन्ध कैसा ? शुभ या अशुभ कामों को करते हुए मन का उनमें लिप्त न होना असङ्ग कहलाता है।

8. समभाव का अभ्यास— हेय (त्याज्य) वस्तु से खेद न करो और उपादेय (प्राप्य) वस्तु से सङ्ग न करो। (अ) समता का आनन्द— जो अनन्त और सार आनन्द समता से प्राप्त होता है वह न राज्य प्राप्ति से मिलता है और न सुन्दर युवतियों के साथ रमण करने से।

(आ) सबको अपना बन्धु समझना चाहिये “ऐसा कौनसा स्थान है जहाँ मैं नहीं हूँ और ऐसी कौनसी वस्तु है जो मेरी नहीं है” इस निश्चय को दृढ़कर लेने पर बुद्धि में भेदभाव नहीं रहता।

9. **कर्तृत्व का त्याग**— जैसे स्याही के ख़तम हो जानेपर कालस स्वयं ही ख़तम हो जाती है ऐसे ही स्पन्दनरूप कर्म (कर्तृत्वभाव) के क्षीण होने पर मन स्वयं ही क्षीण हो जाता है।

10. **सब वस्तुओं का त्याग**— सब अवस्थाओं का त्याग करने पर जो बाकी रहता है वही आत्मा है। सच्चा सर्वत्याग ऐसी चिन्तामणि है जिससे सब प्रकार के दुःखों का अन्त हो जाता है?

(अ) **सर्वत्याग का स्वरूप**— चित्त को ही सब कुछ कहते हैं— चित्त का त्याग ही सर्वत्याग है। जो सब कुछ है, जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है उस सबके एक कारण (परमात्मा) में सबको त्याग (अर्पण) करके सर्वत्याग होता है।

(आ) **महात्यागी का स्वरूप**— सब इच्छाओं का, सब शङ्काओं का, सब तृष्णाओं का और सब निश्चयों का त्याग कर दिया है वह महात्यागी कहलाता है।

(इ) **त्याग का फल**— जो कुछ भी नहीं लेता उसीको सब कुछ दिया जाता है। जो सब वस्तुओं का त्याग कर देता है उसी की सेवा में सब वस्तुएं उपस्थित हुआ करती हैं।

11. **समाधि**— निर्विकल्प समाधि में स्थिति हो जाये तो अक्षय सुषुप्ति के समान शुद्ध पद की प्राप्ति हो जाती है।

(अ) **समाधि का सच्चा स्वरूप**— सब आशा (इच्छा) रूप तिनकों को जलाने के लिये अग्निरूप तत्त्वज्ञान को समाधि कहते हैं। समाधि नाम है उस परम प्रज्ञा का जो स्थिर है, नित्य तृप्त है और यथार्थ तत्त्व का ज्ञान देने वाली है। विषयों में बिल्कुल भी तृष्णा न होने का नाम समाधि है।

(आ) **मन के लीन होने का आनन्द**— शान्त बुद्धि वाले लोग सुख भोग की सीमा पर पहुंच जाते हैं जो मन को मार लेते हैं। चितरूपी ताम्बे को शोधकर परमार्थ रूपी सोना बनाकर सच्चा आनन्द मिलता है। शरीर रूपी पत्थरों से नहीं।

9. **उपसंहार**— मनुष्य के जीवन के अधिकतर अथवा सभी दुःखों का कारण उसका अज्ञान है। जितना—जितना मनुष्य को अपने और जगत् के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता जाएगा उतना ही मनुष्य का दुःख कम होता चला जाएगा। पूर्ण आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो जाने पर और तदनुसार आचरण करने पर, मनुष्य के सब दुःख क्षीण हो जाते हैं, और उसे परम शान्ति और परम आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। इस परम आनन्द और परम शान्ति को प्राप्त करने के लिये प्रत्येक जीव को अपने आप ही पूरा-पूरा यत्न करना चाहिये। बिना पुरुषार्थ किये, किसी दूसरे की कृपा—मात्र से मनुष्य को उस परम पद की प्राप्ति नहीं होती। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये उसका अधिकारी बनना चाहिये। आत्मज्ञान का अधिकारी बनने के लिये विचार, साधु— सङ्ग, समता और सन्तोष की आवश्यकता है। इनके अभ्यास से मन शुद्ध और शान्त हो जाता है और नित्य आध्यात्मिक साधनों को करते— करते एक दिन आत्मा अथवा ब्रह्म के वास्तविक रूप का साक्षात्कार कर लेता है। जगत् और ईश्वर के वास्तविक रूप का ज्ञान केवल आत्मानुभव द्वारा ही हो सकता है उसका और कोई दूसरा साधन नहीं है। वह जैसी जैसी क्रिया करता है वैसा ही उसका रूप और नाम हो जाता है।

मन, बुद्धि, अहङ्कार, चित्त, कर्म, कल्पना, स्मृति, वासना, अविद्या, मल, माया, प्रकृति, ब्रह्मा आदि देवता, जीव, आतिवाहिक देह, इन्द्रिय, पुर्यष्टक, भौतिक शरीर और बाह्य पदार्थ — ये सब मन के ही अनेक नाम और रूप हैं। मन ही जीव है, वही अहङ्कार हो जाता है, वही शरीर का रूप धारण कर लेता है। संसार के जितने बन्धन हैं, और जितनी इयत्ता (महदूदियत) है, वे सब मन ने अपनी वासना के लिये बनाये हैं। मन ही एक से अनन्त और नाना प्रकार के जीव हो जाता है। योगवासिष्ठ में सिद्धियों के प्राप्त करने के तीन विशेष साधन बताये हैं—(1) मन की शुद्धि (2) कुण्डलिनी शक्ति का उद्बोधन तथा नियमित संचालन और (3) प्राणायाम। जो इन साधनों का यथोचित रीति से अभ्यास कर लेता है उसको अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। मनुष्य कोई भी सिद्धि प्राप्त कर ले, उसको परम आनन्द और परम तृप्ति की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को नहीं

जान लेता। अपने को ब्रह्म अनुभव करना मोक्ष है और शरीर, मन या जीव अनुभव करना बन्धन है। बन्धन को उत्पन्न करने और स्थिर रखने के ये कारण हैं— 1) वासना, (2) अपने को परिमित समझना, (3) मिथ्या भावना, (4) आत्मा को भूल जाना, (5) अनात्म पदार्थों में अहंभावना और (6) अज्ञान।

योगवासिष्ठ महारामायण श्रीमद्भगवद्गीता के मूल सिद्धांतों पर आधारित है व अध्ययनोपरांत यह कहा जा सकता है कि परमात्मा की प्राप्ति कराने के साधन रूप में योगवासिष्ठ एक वृहद व विस्तृत मार्ग है बल्कि श्रीमद्भगवद्गीता एक अत्यंत सहज व सरल मार्ग है।

“यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्कचित्।

इदं समस्तविज्ञानशास्त्रकोशं विदुर्बुधाः॥” (368/12)

जो बातें इस ग्रन्थ में हैं वे और और ग्रन्थों में भी मिलेंगी। जो इसमें नहीं हैं वे कहीं नहीं मिलेंगी। विद्वान लोग इसको सब विज्ञान शास्त्रों का कोश समझते हैं।

युक्तियुक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि ।

अन्यत्तणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना ॥

योऽस्मात्तातस्य कृपोऽयमिति कौपं पिबत्यपः ।

त्यक्त्वा गाङ्गं पुरस्थं तं को नाशास्त्यतिरागिणम् ॥

अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेष्टुक्तिबोधकम् ।

अन्यत्तणमिव त्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविना ॥ (2/18/13.4.2)

युक्तियुक्त बात तो बालक की भी मान लेनी चाहिये लेकिन युक्ति से च्युत बात को तृण के समान त्याग देनी चाहिये, चाहे वह ब्रह्मा ने ही क्यों न कही हो। जो अतिरागवाला पुरुष अपने पास मौजूद रहते हुये गङ्गाजल को छोड़कर कुँवें का जल इसलिये पीता है कि यह कुँवाँ मेरे पिता का है, वह सबका गुलाम है। जो न्याय के भक्त हैं उनको चाहिये कि जो शास्त्र युक्तियुक्त और ज्ञान की वृद्धि करनेवाला है उसको ही ग्रहण करें, चाहे वह किसी साधारण मनुष्य ही का बनाया हुआ क्यों न होय और जो शास्त्र ऐसा नहीं है उसको तृण के समान फेंक दें, चाहे वह किसी ऋषि का बनाया हुआ ही हो।

सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।

सर्वस्सद्बुद्धिमाप्नोतु सर्वस्सर्वत्र नन्दतु ॥

दुर्जनरु सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात् ।

शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्

सब लोग कष्टों को पार करें, सब लोग भलाई ही देखें, सबको सद्बुद्धि प्राप्त हो, सब सर्वत्र प्रसन्न रहें। दुर्जन सज्जन बन जावें, सज्जन शान्ति प्राप्त करें, शान्त लोग बन्धनों से मुक्त हों, तथा मुक्त लोग औरों को मुक्त करें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची—

1. आत्रेय, भीखन लाल योगवासिष्ठ और उसके सिद्धांत, तारा प्रिंटिंग वर्क्स बनारस, 1957, पृ.सं. 67.
2. आत्रेय, भीखनलाल, योग वसिष्ठ और उसके सिद्धांत, तारा प्रिंटिंग वर्क्स बनारस, 1957, पृ.सं. 220—274.
3. आत्रेय, भीखनलाल, योग वसिष्ठ और उसके सिद्धांत, तारा प्रिंटिंग वर्क्स बनारस, 1957, पृ.सं. 423—449.।
4. तलक लोकमान्य, बालगंगाधर, गीतारहस्य, मोतीलाल बनारसीदास, मुम्बई, 1975.।
5. शांकरभाष्य, श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1955।

6. शुक्ला, आचार्य विद्याधर, चरक संहिता, सी एस पब्लिशर्स, सन 2015।